2.5. षड्विध धर्म

धर्म के षड्विध स्वरूप का प्रतिपादन महर्षि याज्ञवल्क्य कृत स्मृति में हुआ है। इसके आचार अध्याय में महर्षि ने मनु द्वारा कहे गए धर्म का ही अनुसरण करते हुए मनुष्य मात्र के लिए वर्णादि धर्मों का पृथक् विभाजन कर उनका क्रमशः विस्तृत विवेचन किया है।

योगीश्वरं याज्ञवल्क्यं संपूजयं मुनयोऽब्रुवन्।
वर्णाश्रमेतराणां नो ब्रुहि धर्मनशेषतः।।
(याज्ञ० स्मृ० 1/1)

मिताक्षरा में इस षड्विध धर्म का निरूपण किया गया है, जो इस प्रकार ..

(1) वर्णधर्म : वर्ण धर्म से अभिप्राय ब्राह्मणादि वर्गों के लिए विहित नियमावली से है, जैसे - ब्राह्मण के लिए नित्य कर्मों को करने का निर्देश तथा मद्यपान आदि का निषेध।

(2) आश्रम धर्म : आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ आदि) अनुसार अनुपालनीय कर्त्तव्य या धर्म, जैसे - अग्नि परिचर्या, भिक्षाचरण आदि।

(3) वर्णाश्रम धर्म : इसमें उन नियमों (धर्मों) की गणना की जाती है, जो प्रत्येक मनुष्य को उसके वर्ण के अनुरूप विधान का अनुसरण करते हुए आयु अनुसार विभिन्न आश्रमों में प्रविष्ट होने पर अनिवार्य रूप से अनुकरणीय है, जैसे ब्राह्मण वर्ण के लिए ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवेश करने पर पलाश निश्चित दण्ड धारण करना, क्षत्रिय ब्रह्मचारी को वट या खैर का दण्ड धारण करना आदि।

(4) गुण धर्म : शास्त्रीय रीति से अभिषेकादि क्रियाओं के द्वारा अभिषिक्त राजा को प्रजापालनादि करना चाहिए।

(5) निमित्त धर्म : किसी निमित्त या कारण से किए जाने वाले कर्त्तव्य, जैसे - विहित को न करने और निषिद्ध को करने पर प्रायश्चितादि का

(6) साधारण धर्म : इसके अन्तर्गत वे कर्म समाहित हैं, जिनका पालन सभी मनुष्यों के लिए अनिवार्य है, चाहे वे किसी भी वर्ण के हों अथवा किसी भी आश्रम धर्म में संलग्न हों, जैसे सत्य, अहिंसा आदि।

सभी मनुष्यों के द्वारा सदैव पालनीय इन साधारण धर्मों का निरूपण आचार्य मनु ने धर्म के दस लक्षणों के रूप में किया है।

2.6. दशकं धर्म लक्षणं

मनुस्मृति में आचार्य मनु ने धर्म विषयक विस्तृत चर्चा की है। उन्होंने धर्म के प्रमाणों, ब्रह्मावर्त आदि क्षेत्र, वर्ण व आश्रम के कर्तव्यों का निरूपण करने के उपरान्त दश लक्षण युक्त धर्म का उपदेश किया है और चारों आश्रमों में रहने वाले प्रत्येक द्विज के द्वारा उनको अनिवार्य रूप से पालन पर बल दिया है-

चतुर्भिरपि चैवैतैनित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः।
दशलक्षणको धर्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः।। (मनु० 6.91)

मनु द्वारा कहे गए ये धर्म हैं-

घृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीविद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।। (मनु06/92)

अर्थात् धृति, क्षमा, दम, अस्तेय (चोरी न करने), शौच (पवित्रता), इन्द्रियों को वश में करना, ज्ञान, विद्या, सत्य, क्रोध का परित्याग- ये दसों धर्म के लक्षण हैं। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है

धृति : अर्थात् धैर्य या धीरज। कठिन से कठिन समय अथवा विपरीत

.कहा है

परिस्थितियों में भी अपने मन व बुद्धि को शान्त रखना, नियन्त्रण न खोना

उनके प्रति किसी प्रकार की दुर्भावना न रखना, उनको अपमानित न करके

देवताऽभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च।। (मनु02/176)

ही धैर्य अथवा धृति है।

तटस्थ बने रहना ही क्षमा है। ब्राह्मण के लिए क्षमा के सम्बन्ध में मनु ने

सम्मानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव।

अमृतस्येव चाकाझेदवमानस्य सर्वदा।। (मनु० 2/162)

अर्थात् ब्राह्मण विष के समान सम्मान से सदैव घबराता रहे तथा

अमृत के समान अपमान की आकांक्षा करे। इसका अभिप्राय यह है कि वह

मानापमान में सहिष्णुता का भाव रखे।

दम : मन को विचलित करने वाले कारणों, अवसरों व परिस्थितियों

के उपस्थित होने पर भी मन में किसी प्रकार का विकार न आना 'दम'

कहलाता है।

अस्तेय : किसी दूसरे की वस्तु का बलपूर्वक हरण कर लेना, उसे

लेकर भाग जाना और बाद में अस्वीकार करना चोरी है। इसके विपरीत

आचरण अस्तेय है अर्थात् अन्य व्यक्ति की वस्तु पर अपने अधिकार की

चेष्ठा न करना और न ही बलपूर्वक किसी की वस्तु को छिनना (ग्रहण

करना) यही अस्तेय है

स्यात्साहसं त्वन्वयवत्प्रसभं कर्मं यत्कृतम्।

निरन्वयं भवेत्स्तेयं हृत्वाऽपत्ययते च यत्।। (मनु08/332)

शौच : अर्थात् पवित्रता। विधि-विधानपूर्वक शरीर की पवित्रता मिट्टी

आदि के द्वारा करना ही शौच है। शौच केवल शारीरिक क्रिया ही नहीं वरन्

भारतीय संस्कृति में मन, वचन व कर्म की पवित्रता (शुद्धता) पर भी विशेष

बल दिया गया है। आचार्य मनु ने ब्रह्मचारी को शुचिता का निर्देश देते हुए

नित्य स्नान, पूजन, तर्पण व हवनादि करने की व्यवस्था की है

नित्यं स्नात्वा शुचिः कुद्दिवर्षिपितृतर्पणम्।

..

-

भारतीय सामाजिक संस्था :

इन्द्रियनिग्रह : अर्थात् इन्द्रिय संयमन। नेत्रादि पञ्चेन्द्रिय को नियन्त्रित करके उनके विषयों से (भोगों से) उनको दूर रखना या असम्बद्ध रखना इन्द्रिय निग्रह कहलाता है। आचार्य मनु ने इन्द्रियों को नियन्त्रित रखने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहने को कहा है

इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम्।

जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः।।(मनु० 7/44)

क्योंकि इन इन्द्रियों के विषयों में आसक्ति रहित होकर ही मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त करने में समर्थ होता है

इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयम्।

संनियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति।। (मनु0 2/93)

धी : अर्थात् बुद्धि। शास्त्रोक्त ज्ञान को ही बुद्धि कहा गया है, क्योंकि शास्त्र सदैव सन्मार्ग पर प्रेरित कर अनिष्ट से मनुष्य को निवृत्त करते हैं। मनुष्य के लिए धी अर्थात् बुद्धि की विशेष महत्ता है, क्योंकि बुद्धि ही संशयरहित, निश्चयात्मक ज्ञान की आधारशिला है। उसी के द्वारा मनुष्य उचितानुचित का निर्णय लेने में समर्थ होता है। अत: वेदों का मुख कहे जाने वाले गायत्री मन्त्र में भी सविता देव से बुद्धि को सत्कर्मों में प्रवृत्त करने

की प्रार्थना की गई है।

विद्या : आत्मज्ञान का नाम ही विद्या है। ऐसी विद्या जो आत्मतत्व का परिज्ञान कराए तथा मोक्षदायिनी हो, वही विद्या की श्रेणी में परिगणित

..

.

सत्य : अर्थात् जो वस्तु जैसी है, उसका वैसा ही कथन करना सत्य है। इसे सभी धर्मों में माना जाता है।

ब्राह्मणो वै मनुष्याणामादित्यस्तेजसां दिवि।

शिरो वा सर्वगात्राणाम् धर्माणां सत्यमुत्तमम्।। (मनु० 8/6)

अक्रोध : अर्थात् क्रोध न करना। नियमादि का उल्लंघन करने और चित्त को आहत करने वाले कारणों के विद्यमान रहने पर भी शान्त रहना अक्रोध है।इस प्रकार आचार्य मनु ने दस लक्षण युक्त धर्म का प्रतिपादन कर उसका अनुसरण करने वाले द्विजाति के परम गति प्राप्त होने की बात कही है

दश लक्षणानि धर्मस्य ये विप्रा समधीयते।

अधीत्य चानुवर्तन्ते ते यान्ति परमां गतिम्।। (मनु0 6/93)

इनके अतिरिक्त परवर्ती साहित्य में चर्तुदश धर्म स्थानों की चर्चा भी मिलती है।

2.7. चतुर्दश धर्मस्थानानि

महर्षि याज्ञवल्क्य ने चतुर्दश (चौदह) धर्म स्थानों का उल्लेख किया है, जो धर्म (पुरुषार्थ आदि) परिज्ञान में सहायक हेतु अथवा कारण है-

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।

वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश।। (याज्ञ० 1/3)

अर्थात् ब्रह्माण्डादि पुराण, न्याय (तर्कशास्त्रादि), मीमांसा आदि शास्त्र, मनु आदि प्रोक्त धर्मशास्त्र, षड् वेदांगों से युक्त चारों वेद - ये चौदह धर्म आदि पुरुषार्थ विद्या के स्थान (साधक) हैं। इन सभी के द्वारा मनुष्य अपने धर्म को जान सकता है और स्वधर्मानुष्ठान में युक्त हो सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय धर्म की परिधि अत्यन्त विशाल है। भारतीय धर्म मनुष्य को कर्तव्य की शिक्षा चार स्तरों पर देता है राष्ट्र, समाज, परिवार, स्वयं के प्रति। ये परस्पर अनुस्यूत हैं और एक-दूसरे के बिना अपूर्ण भी हैं। समाज की आवश्यकताओं के अनुसार इसके स्वरूप

में परिवर्तन होता रहा है। यदि धर्म की कुछ प्रवृत्तियों के कारण समाज का विघटन होता दिखाई दिया, तो उनमें संशोधन किया गया। मनु ने भी कहा है कि वह धर्म त्याज्य है, जो लोक को कष्ट दे

परित्यजेदर्थकामौ यो स्यातां धर्मवर्जितौ।
धर्म चाप्यसुखोदकं लोक विक्रष्मेव च।।

समाज को आगे बढ़ाने के लिए नवीन प्रवृत्तियों को अपनाया गया। महाभारत में धर्म की इस प्रवृत्ति का पर्यालोचन करते हुए कहा गया है

.

स एव धर्मः सोऽधर्मो देशकाले प्रतिष्ठितः।
आदानमनृतं हिंसा धर्मोह्यवस्थिकः स्मृतः।।

इस प्रकार मानव समाज की सौष्ठवपूर्ण प्रगति के लिए धर्म की आवश्यकता स्पष्ट है। धर्मानुकूल आचरण सभी मनुष्यों का कर्तव्य है, धर्म के आश्रय से ही मानव जाति उन्नति कर सकती है अन्यथा नहीं।

Lecture by-

Dr. Ritu Mishra

SEM. 4th

Department of sanskrit

Shivaji college.